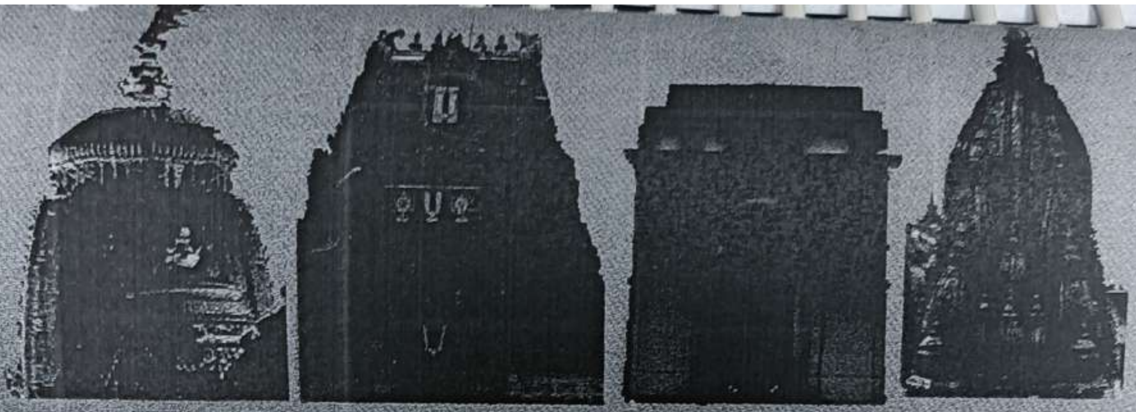

# गङ्गावतरणम्

(आचार्यगङ्गाधरपण्डाभिनन्दनग्रन्थः)

सम्पादकौ

प्रो. भागीरथिनन्दः

Amar Granth Publications
Vijay Nagar, Delhi-110009

**Editorial Board**

1. *Dr. Smt. Promidini Panda*
2. *Prof. Hare Krishna Mahapatra*
3. *Prof. Sukant Kumar Senapati*
4. *Prof. Satya Narayana Acharya*
5. *Dr. Keshav Dev*

ISBN : 81-87322-61-6

Year: 2019

© Gangadhar Panda

Price : ₹ 795/-

Printed at :
Neil Advertising
Jagat Puri Ex. Delhi-93

## वाघां प्रति

**प्रो. भागीरथिनन्दः**
शैक्षणिकसङ्कायप्रमुखः,
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली।

**अहं भरतवंशजोऽमृतसरान्नु वाघां प्रति**
**विलोकितुमितः स्वदेशपरिधान्तिमां मृत्तिकाम्।**
**कराहृतखनित्रघातनसमुत्थमृत्पिण्डके**
**तथाकथितपार्श्वदेशधरणेः समार्धं धृतम्॥ 1 ॥**

अर्थ- मैं भरत के वंशज भारतवासी अपने देश की आखिरी मिट्टी को देखने अमृतसर से वाघा बॉर्डर के पास गया। वहां जाकर अपने हाथ में ली हुयी खंती के आघात से उठे मिट्टी के पिण्ड में देखा कि हमारे तथाकथित पड़ोसी देश का आधा टुकड़ा है। वह पड़ोसी देश पाकिस्तान नहीं, वह तो मेरे देश का एक हिस्सा मात्र है- यह व्यंग्य है।

**यदि प्रयतसेऽभितोऽमृतसरात्तु वाघां प्रति**
**प्रयातुमधुना ततः कतिपयैः स्वसैन्यैः सह।**
**तदीयखरवाहनं प्रविश ते कपाटात् परं**
**पराङ्गणकपाटपाटनपरं प्रभुत्वं किर॥2॥**

अर्थ- अरे मन, अगर तुम अमृतसर से वाघा बॉर्डर की ओर अभी जाना चाहते हो, तो अपने कुछ सैनिकों के साथ उनके द्रुतगामी वाहन में प्रवेश कर तुम्हारे अपने देश के फाटक पार कर पराये फाटक को तोड़कर वहां अपना प्रभुत्व विस्तार करो।

**अदम्यबलवान्नवोच्छलितसाहसः सैनिक!**
**पराक्रमधुरन्धरस्त्वमसि देशमातुः सुतः।**
**दिनान्तसमये सरन्नभिमुखं तु वाघास्थले**
**कपाटपटलान्निजाद्वद कुतः परावर्तसे?॥3॥**

अर्थ- हे सैनिक! तुम मेरी देश माता के अदम्य बलशाली, नये उछलते साहसवाले, पराक्रम के धुरन्धर पुत्र हो। जरा बताओ, वाघा बॉर्डर में सूर्यास्त के समय तुम परेड में आगे बढते हुए अपने देश के फाटक के पास से क्यों लौट आते हो? अर्थात् लौटो मत,आगे बढकर दुश्मन को हराकर वहां भी अपना वर्चस्व कायम करो- यह व्यंग्य है।



**दिनान्तसमये पराक्रमपरायणान् सैनिकान्**
**असंख्यतनयाः प्रसादयितुमेत्य देशस्य मे।**
**स्वकीयकरतालिकाध्वननतो न हुंकारतो**
**विपक्षवसुधाहृदं न किमलं विधातुं द्विधा?॥4॥**

अर्थ- सूर्यास्त के समय वाघा बॉर्डर में परेड में अपने पराकम से भरे सैनिकों के मनोबल बढ़ाने के लिए आये मेरे देश के असंख्य पुत्रगण अपने हुंकार से नहीं, केवल सम्मिलित तालियों की गूंज से दुश्मन धरती के हृदय के दो फाड़ करने में क्या पर्याप्त नहीं है?

**स्वदेशमलयानिलो यदि महानदीनर्मदा-**
**शुभासुरनदीकलिन्दतनयाविपाशोदकैः।**
**सुशीतलतरः स्थिरत्वमुपयाति वाघास्थले**
**दशारिभुवि का ततो भवति तैः स्वतश्चिन्त्यताम्॥5॥**

अर्थ- महानदी, नर्मदा, शुभा,गंगा, यमुना, विपाशा आदि नदियों के जल से शीतलतर हो कर अपने देश के मलय पर्वत से आया हुआ पवन यदि वाघा बॉर्डर में जाकर स्थिर हो जाय अर्थात् रुक जाय तो शत्रु की धरती की क्या दशा होगी, वह स्वयं शोच ले। यहां व्यंग्य रूप में भारत की अखण्डता की कल्पना की गयी है। जैसे मलयानिल से प्रतीत दक्षिण भारत, महानदी से ओडिशा-छत्तीसगढ़, नर्मदा से मध्यभारत और गुजरात, शुभा (वेद प्रसिद्ध) से मध्य भारत, सुरनदी गंगा से बंगाल-बिहार-उत्तरप्रदेश-उत्तराखण्ड, यमुना से हरियाणा-दिल्ली, विपाशा से हिमाचल प्रदेश-पंजाब अर्थ से भारत की अखण्डता दिखायी गयी है।

**सुभाषभगतोधमाब्दुलगान्धिझांसीश्वरी-**
**सुरेन्द्रबिरसापटेलतिलकादिभिर्योधृभिः।**
**स्वदेशजननीकलेवरविभाविभागोऽसि स**
**त्वमित्यरित आहृतस्तव कृतघ्न! वाघार्पणम्॥6॥**

अर्थ-सुभाष चन्द्र बोस, भगत सिंह,उधम सिंह,अब्दुल हमीद,महात्मा गान्धी,झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, वीर सुरेन्द्र साय, बिरसा मुण्डा, सरदार वल्लभभाई पटेल, बाल गंगाधर तिलक आदि योद्धाओं ने तुम्हे अपनी देशमाता के शरीर के सौन्दर्य का हिस्सा मानकर दुश्मन से मुक्त कराया, परन्तु अरे कृतघ्न! तुम ने प्रतिदान में वाघा बॉर्डर खड़ा कर दिया।

**प्रचण्डमतिडायराहितभुशुण्डिकाताण्डवा**
**निरीहनरमुण्डखण्डनपरम्परामण्डना।**

**घनोष्मरुधिराप्लुता प्रथितजालियाबागभू-**
**ररे शठविपक्ष! ते नयनतोऽस्ति दूरं कियत्??॥7॥**

अर्थ-अरे मूर्ख दुश्मन! घोरमति जनरल डायर के आदेश से चली गोलियों के ताण्डव का प्रमाण, निरीह मनुष्यों के मस्तक-खण्डन की परम्परा से मण्डित,गाढ और गरम खून की बाढ से नहाई हुई प्रसिद्ध जालियांवाला बाग की मिट्टी तेरी आखों से भला कितनी दूरी पर है?

**प्रदोषसमये मयाऽऽकलितमेव वाघास्थले**
**दृशा तव ममांशयोर्जनसमूहसङ्ख्याबलम्।**
**महोदधिविशालमस्ति मम भारतं चेद्बत**
**विपक्ष! तव भागभाग्भुवमवेहि कुल्यानिभम्॥8॥**

अर्थ- संध्या काल में मैंने अपनी आंखों से वाघा बॉर्डर पर तुम्हारे और मेरे हिस्सों में एकत्रित जनसमूह के संख्याबल को देखकर अरे विरोधी! मैंने यह अंदाजा लगाया कि मेरा भारत महासमुद्र की तरह विशाल है और तुम्हारा भूभाग तो एक छोटा सा तालाब जैसा है।

**इतः प्रवहता शमोपहितवायुना पोषिता**
**ततः प्रहरणप्रहारपरिदुर्बलाङ्गावली।**
**क्वचित्पतति चेत्तवोपरि विभाजिका भित्तिका**
**द्विषः शमपराक्रमः शिरसि ते तु नर्तिष्यति॥9॥**

अर्थ- मेरे ओर से शान्ति से सने हुए बहते पवन से पोषित, किन्तु तुम्हारे ओर से चलाए जा रहे अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार से अतिदुर्बल शरीरवाली हम दोनों को अलग अलग करनेवाली वाघा पर बनी दीवार अगर तुम्हारी तरफ गिर गयी, तो तुम जैसे दुश्मन के सिर पर मेरी शान्ति का पराक्रम नृत्य करेगा अर्थात् तुम्हारे ऊपर समग्र अधिकार मेरा हो जाएगा यह व्यङ्ग्य है।

**सुदीर्घसमयः परं परिघनिर्मितेर्वै गतो**
**विभाजनविधौ द्वयोस्तव ममापि वाघोरसि।**
**मयातिमहता श्रमेण रचितो विकासो महाँ-**
**स्तवात्मजभुशुण्डिकाप्रहरणैस्तु भीतं जगत्॥10॥**

अर्थ- तेरे और मेरे दोनों के वाघा नर विभाजन के बाद एक दीर्घ काल खंड बीत गया। इसी बीच हमने कड़ी मेहनत से बहुत विकास कर लिया और तुम्हारे बच्चों के बंदूक के आतंक से दुनिया डरी हुई है।

आई.एस.एस.एन :२४५४-२८८१
SMITHIKA ISSN : 2454-2881

# स्मीथिका

अन्ताराष्ट्रिय-बह्वानुशासिक-बहुभाषिक-वार्षिक-शोधपत्रिका

(पुनरीक्षिता)

संख्या -२०२०

मुख्यसम्पादकः -

ड° रातुलबुजरबरुवा

सम्पादकौ

ड° कमललोचनआत्रेयः

ड° देवब्रतबाडड़

प्रकाशकः -

संस्कृतसाहित्यविभागः

कुमारभास्करवर्मसंस्कृत-पुरातनाध्ययनविश्वविद्यालयः

नलबारी, असमप्रदेशः

97

# साहित्यरत्नाकरे गुणालङ्कारविवेचनम्

प्रो. भागीरथिनन्दः

शब्दवादिन आलङ्कारिका रमणीयार्थप्रतिपादकस्य शब्दस्य काव्यत्वमामनन्ति। अथ गुणालङ्कारयोः काव्यविशेषणताङ्गीकारे को विशेष इति धर्मसूरिः स्वसाहित्यरत्नाकराख्यग्रन्थे स्वयमाशङ्क्य समाधत्ते यत् न विशेषणाङ्गीकारेऽनुपादेयतेति। अत्र पूर्वपक्षद्वारेणैतदनङ्गीकारे शङ्काद्वयमुत्पादयति अव्यापकत्वात्, अचारुताहेतुत्वादिति। अव्यापकता इति काव्ये गुणालङ्कारयोः। परन्तु नैतद्युक्तम्, निर्गुणालङ्कारशब्दार्थेभ्यो व्यावर्त्तकत्वात्। अयं भावः- ''तस्य गुणालङ्काररहितयोः शब्दार्थयोः काव्यव्यवहारनिरासकवादावश्यकत्वम्'' इति तत्स्पष्टीकुर्वन् तन्मन्दरटीकाकारः। न चाचारुत्वहेतुत्वम्, तयोः कविताकामिनीरमणीयकताऽऽपादकत्वात्। अत्र स्मर्यन्ते सौन्दर्यमलङ्कारः काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः, तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः, अलङ्कारो हि चारुत्वहेतुः प्रसिद्धः, उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्काररीतयः इत्यादीनि वचनानि प्रसिद्धालङ्कारिकाणाम्। उत्तरपक्षं द्रढयितुं ग्रन्थकृदसौ धर्मसूरिः काव्यालङ्कारसूत्रकारं वामनमुपन्यसतीह पर्याये। तथाहि-

युक्तेरिव रूपमङ्ग............ संश्रयन्ते।।[१]

अर्थात् गुणालङ्कारयोः सन्निवेशेन किमप्यपूर्वं चारुत्वं काव्यस्य भवति। निर्गुणं तु काव्यमलङ्कारयुक्तमपि न शोभावहम्, द्वयोर्गुणालङ्कारयोस्तु काव्येन सह सम्बन्धनिबन्धनादुभयोश्चारुत्वहेतुत्वमिति एतदीय आशयः।

अनयोर्द्वयोर्गुणालङ्कारयोश्चारुत्वहेतुत्वसिद्धेः एकस्याङ्गीकारे कर्तव्ये सति अन्यतर-प्रयोजनप्रतिपत्तिप्रस्तावः सम्पद्येत। अथ च द्वयोरनयोरभेद आकल्प्यते इति पूर्वपक्षः। परन्तु तत्र, उभयोर्मिथो व्यावर्तकधर्मवैविध्यात्। तथा सति शृङ्गित्वसाम्यात् गोमहिषयोः पार्थिवत्वसाम्यात् घटपटयोश्चाभेदो निश्चीयते इति अस्मिन् प्रसङ्गे मन्दरटीकाकारः।

अस्मिंश्च वामनमतानुसृततया भोजराजेन या गुणालङ्कारयोर्व्यावर्तकधर्मता उक्ता, सा सन्निवेश्य निरस्ता। तथाहि भोजराजेन.... ''काव्यव्यवहारप्रवर्तका गुणाः, तच्चारुत्वहेतवोऽलङ्कारा इति व्यावर्तकधर्म

ISSN : 2454-2881

उक्तः। एतत् खण्डयतो धर्मसूरेः मतं यथा'' तन्नोपपद्यते। तत् किं सर्वे गुणास्तत्प्रवर्तकाः, कतिपये वा
नाद्यः ''रीतिरात्मा काव्यस्य''[२] इति हि तन्मतम्। रीतयश्च श्लिष्टवचनरचनात्मिकाः। ''ताश्च तिस्रः
गौडी, वैदर्भी, पाञ्चाली चेति'' तत्र समग्रगुणा वैदर्भी, ओजःकान्तिमती गौडी, माधुर्यसौकुमार्यधुर्या
पाञ्चालीरीतिरिति हि स्थितिः। तत्र साकल्यस्य काव्यव्यवहारप्रवर्तकत्वे गौडीपाञ्चाल्योरव्याप्तिः।
द्वितीयः, अतिव्याप्तेः, यत्किञ्चिद्गुणसत्तामात्रेण यत्र कुत्रापि काव्यव्यवहारप्रसङ्गात्''।[३] इति यद्
विमृष्टं धर्मसूरिणा तन्नितरां युक्ततरम्। विमर्शोऽयं काव्यप्रकाशेऽपि दृष्टचरः। एवमलङ्कारलक्षणमपि
दूषणीयम्।

वस्तुतस्तु भोजराजकृतलक्षणे काव्यव्यवहारप्रवर्तका गुणाः, तच्चारुताहेतवोऽलङ्कारा इत्यत्र
उच्यते- अलङ्कारा गुणविशिष्टकाव्यस्य अविमृष्टगुणकाव्यस्य चारुताहेतवो वा? आद्यपक्षे, किं
गुणपदोल्लेखेन? तस्य चारुत्वहेतुत्वासिद्धेः।

द्वितीये तु अलङ्कारस्याद्यतरतायाः स्वतः सिद्धिरिति अत्रैव ग्रन्थकारस्य विचारणीयमासीत्।
गुणालङ्कारसामान्यलक्षणे- ''वयं तु ब्रूमः'' इति स्वसिद्धान्तम्-

समवायवृत्त्या रसोपस्कारकत्वं गुणसामान्यलक्षणम्।
संयोगवृत्त्या रसोपस्कारकत्वमलङ्कारसामान्यलक्षणम्।।[४]

इति सन्दर्शयति ग्रन्थकारः।

अत्र ''काव्यात्मरससमवेतत्वे सति रसोत्कर्षाधायकधर्मत्वं गुणसामान्यलक्षणम्। काव्याङ्ग-
शब्दार्थ-संयुक्तत्वे सति रसोत्कर्षकहेतुत्वमलङ्कारलक्षणमित्यर्थः।''[५] इति नौकाटीकाकारः। भट्टोद्भयदीनां
''समवायवृत्त्या शौर्यादयः संयोगवृत्त्या तु हारादय इत्यस्तु गुणालङ्काराणां भेदः,
ओजःप्रभृतीनामनुप्रासोपमादीनां चोभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थितिरिति गड्डलिकाप्रवाहेणैवेषां भेदः''
इति प्रलपतां मुखमुद्रणाय अनयोर्गुणालङ्कारयोरत्र भेदकपुरःसरं लक्षणे प्रदर्शिते। मतमिदं धर्मसूरेरपि
काव्यप्रकाशानुसारि। यद्यपि काव्यप्रकाशकारेण गुणलक्षणेऽङ्गिनो रसस्याचलस्थितयो गुणाः[७]
अलङ्कारलक्षणे सतो रसस्य अङ्गद्वारेण (शब्दार्थ) उपकारका अलङ्कारा[८] इति प्रयोगात् अनयोः
रससमवायत्वसंयोगत्वे प्रतीयेते। किंच 'यत्र तु नास्तितत्रोक्तिवैचित्र्यमात्रपर्यवसायिनः। क्वचित्तु सन्तमपि
नोपकुर्वन्तीति''[९] अलङ्कारलक्षणकारिकायाः वृत्तौ श्रीमान् मम्मटः प्रस्तौति। एतेनालङ्काराणां संयोगवृत्तिः
फलिता।

ननु चित्रमिति ''गुणालङ्कारयुक्तमिति गुणस्याङ्गिरससमवेतत्वात् चित्रेऽपि रसोऽङ्गी इति आस्तां
काव्यप्रकाशकारस्याभिमतम्, न, तत्रैव तद्बालबोधिनीकारेण अत्र गुणपदं तद् (शब्दार्थ) व्यञ्जकपरिमिति



ISSN : 2454-2881

तरङ्गः ३१

# कथासरित्...

द्रपद-२०७७ विक्रमसंवत

ल-सप्टेम्बर-२०२०

कथाभारती

कलिकाता

(28)

ISSN-0976-4453

# कथासरित्...

## समकालिकसंस्कृतकथानामद्वितीया षाण्मासिकी

नवदेहलीस्थराष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्यार्थिकसहयोगेन प्रकाशिता

एकत्रिंशतरङ्गः

कोरोनाकथाविशेषतरङ्गः

चैत्र-भाद्रपदः-२०७७ विक्रमसंवत्
एप्रिल-सेप्टेम्बर-२०२० क्रैस्ताब्दः

सम्पादकौ

बनमाली बिश्वालः
नारायणदाशः

सहसम्पादकः

राकेशदाशः

सम्पादनप्रबन्धकः

जयदेवदिण्डा

कथाभारती
कलिकाता
२०२०

# कोविदः

## भागीरथिनन्दः

तस्मिन् दिने दीनानाथस्य श्रमशुष्कयोः पदयोः हस्तौ चालयन्ती पप्रच्छ तं पत्नी करुणा, "अयि, कोऽयं कोविदो नाम नवीनः? मम ग्रामे तु मण्डपे शास्त्रपुराणादिचर्चाम् आचरन्तो जनाः कोविदाः कथ्यन्ते। अस्माकं प्रतिवेशिनो मणिकण्ठस्य पुत्रेण प्राणकृष्णेन गतवर्षे वर्धास्थमहात्मगान्धिहिन्दीविश्वविद्यालयस्य परीक्षां विलिख्य कोविदः इत्युपाधिरधिगतः। यो यस्मिन् विषये निपुणः, स तस्मिन् कोविदः कथ्यते। पुनः कोऽयं कोविदो नाम? प्रभाते प्रतिवेशिनी पाञ्चाली तद्विषये विवृण्वती मां भाययति स्म।"

– "अयं कश्चन भूताणुजनितो रोगः।"

– "कर्कटः, क्षयः, कफः, वातः, पित्तम् इत्यादयो रोगास्तु मया श्रुताः। कोऽयम् अपरः?"

– "अयं नवीनो रोगश्चीनदेशप्रभवः। चीनदेशाद् एव प्रसृतः।"

– "कथं प्रसृतः? तस्य किमु हस्तपादाः सन्ति?"

– "अयि मुग्धे, अयं भूताणुरोगो भूतम् आश्रित्यायाति। सन्निकृष्टसङ्गत्या काश-कफादिजन्यो जनाज्जनं सङ्क्रमते।"

– "तेन किं भवति?"

– "तेन ज्वरः, शिरःपीडा, काशः, श्वासग्रहणे क्लेशश्च। आभ्यन्तरः श्वासग्रन्थिः सङ्कुचितोऽपि जायते।"

– "तैः पुनः?"

– "तैः पुनः किम् उपतिष्ठते त्वं ज्ञातुं न शक्नोषि? श्वासग्रहणे क्लेश आपतिते, रुद्धे च प्राणवायौ...।"

– "अस्य कोऽप्युपचारो नास्ति?"

– "साक्षात् तु कोऽप्युपचारो नास्ति। चिकित्सका इतस्ततो हस्तम् आवर्तयन्ति। भाग्यं दृढं चेद् रुग्णो दशाधिकदिनानि चिकित्सालये उपचारितो गृहं प्रत्यावर्तते। अन्यथा...।"

'हा धिग्' इत्युच्चैरुच्चार्य वस्त्राञ्चलेन मुखम् आवृत्य रोदितुम् आरेभे करुणा दीनानाथवचनं निशम्य। इयालँलघुर्जीवनकालः। इयदपि लघुतरं

राजस्थान संस्कृत अकादमी

*Quarterly Peer Reviewed Research Journal*

# स्वरमङ्गला

वर्ष : 46 • अप्रेल–सितम्बर,2021 • संयुक्ताङ्कः

आज़ादी का
अमृत महोत्सव

स्वतन्त्रताया
अमृतमहोत्सवोपलक्ष्ये
'संस्कृतशिक्षक'
विशेषाङ्कः

e-mail: rajasthansanskritacademy@gmail.com • website : www.rajasthansanskritacademy.com

रजि. संख्या RM 26065/72 ISSN-2249-9296

QUARTERLY PEER REVIEWED RESEARCH JOURNAL

# स्वर-मङ्गला

## ( त्रैमासिकी संस्कृत-शोधपत्रिका )

**स्वतन्त्रताया अमृतमहोत्सवोपलक्ष्ये 'संस्कृतशिक्षक' विशेषाङ्कः**

वर्ष : 46 अप्रेल-सितम्बर, 2021 संयुक्ताङ्कः

**प्रधानसम्पादकः**

**दिनेशकुमारयादवः, I.A.S.**

प्रशासकः, राजस्थान-संस्कृत-अकादमी, जयपुरम्

**प्रबन्धसम्पादकः**

**सञ्जय झालाः**

निदेशकः, राजस्थान-संस्कृत-अकादमी, जयपुरम्

**सम्पादकः**

**आचार्यः ( डॉ. ) श्रीकृष्णशर्मा**

संस्कृतविभागाध्यक्षचरः, जयनारायणव्यासविश्वविद्यालयः, जोधपुरम्

म. म. गिरिधर शर्मा-चतुर्वेदीव्याकरणपीठाध्यक्षचरः,

ज. रा. राजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयः, जयपुरम्

**राजस्थान-संस्कृत-अकादमी**

जे-15, अकादमीसङ्कुलम्, झालानासांस्थानिकक्षेत्रम्, झालानाडूंगरी, जयपुरम् (राजस्थानम्)

दूरभाषाङ्कः 0141-2709120

वर्ष : 46 अङ्क : 1
जनवरी–मार्च, 2021

स्वरमङ्गला
ISSN-2249-9296

# स्वातन्त्र्योत्तरसंस्कृतसाहित्यविमर्शः

-प्रोफेसर भागीरथिनन्दः

विधिसन्निधपितबुद्धिविशेषे मानवे यदवधि शब्दोच्चारणकौशलं समजनि तदवधि शब्दार्थोभयनिष्ठं साहित्यमेव भूमावववततारेति नात्र संशयलेशः। वेदात् पूर्वं सततस्य साहित्यस्य रूपं किमपि नोपलभ्यत इति तदभावाशङ्का नोचिता, तदानीं तादृशतत्संरक्षणोपायसङ्कल्पनाभावात्। जीवनमासीच्चेत् साहित्यमेवासीदिति ध्रुवम्। स्वरूपतो वेदानां समुपलम्भात् त एते विश्वेऽस्मिन् प्रथमसाहित्यरूपेण प्रथन्ते। रामायणं हि लोके प्रथमश्छन्दसां साहित्यस्य वाऽवतार इति विदितं विदुषाम्। ततः प्रसरति लोकेऽमृता साहितीधरा नानाप्रकारशय्याः समाश्रयन्ती। तत्रापि नानातत्त्वैः नानारूपैश्च नानाकालेषु रीति–भक्ति–प्रगत्याद्यभिधानानि गुणमानादिदृशा प्रख्यापयल्लोके प्रत्यक्षीभवति साहित्यमेतत्। आधुनिक-कालोऽपि साहित्यवर्गीकरणेऽभिधानमन्यतमम्। आधुनिककालेऽपि स्वातन्त्र्यपूर्व–स्वातन्त्र्योत्तराऽत्याधुनिकादयो विभागा अन्तःपातिनो भवन्ति। तेष्वेतेषु स्वातन्त्र्योत्तरसाहित्यप्रविभाग इह परिशीलनीयो विषयो नः।

लौकिकसाहित्यं रामायणयुगादष्टादशशतकं यावत्तन्मध्यवर्तिन्यवधौ परां समृद्धिं परं प्रसारं चाधिजगाम। वाल्मीकि–व्यास–कालिदास–भवभूति–शङ्कराचार्य–बाणभट्टप्रमुखा महाकवयोऽस्मिन्नवधौ बभूवुर्येषां साहित्यं भारतीयभाषान्तरसाहित्योपजीव्यतामाससाद। संस्कृतसाहित्यस्य सेयं पारम्परिकी रचनाशैली अष्टादशशतकं यावत् पण्डितराजजगन्नाथपर्यन्तं दृग्गोचरीभवति। किं बहुना, पारम्परिककाव्यसिद्धान्ता अपि साहित्यसमवायमिममूरीकृत्य समुद्भूताः, ये भाषान्तरसाहित्येष्वपि भूम्ना परिव्याप्ताः।

अष्टादशशतकस्योत्तरार्धे एकविंशशतकस्य प्रथमार्धे च समग्रे विश्वे प्रसरति पुनर्जागरणे सम्प्रवृत्तेषु च नानासामाजिकपरिवर्तनेषु साहित्यं समाजाभिमुखि सत् नवीनं रूपं जग्राह। भारतेऽपि कालेऽस्मिन् परतन्त्रतादिना-नासमस्याः क्रोडीकृत्य परिवर्तितरूपा साहित्यरचना समजनि। देशात्मबोध–विप्लव–विद्रोहादिविषयान् मुख्यार्थीकृत्य साहित्यं रचयामासुः साहित्यिकाः। संस्कृतेऽपि एवम्भूता अनेका रचना आविर्बभूवुः, यासां रूपास्वादादितत्त्वानि पूर्वसाहित्यापेक्षया पार्थक्यं भेजिरे। अत्रैव हि संस्कृते आधुनिककालस्य सूत्रपातोऽभवदिति विज्ञेयम्। अत्र च भारते शासनं कुर्वतामाङ्ग्लजनानां प्रशस्तिपरकाणि काव्यानि संस्कृते विरचितानि, क्वचिदपि स्तुतिच्छलेन स्वदेशोत्पन्नदुर्दशा दर्शिता व्यङ्ग्यार्थत्वेन। भारतीयसमाजे राजनीतौ, व्यवहारादिषु चाङ्ग्लभाषाप्रवेशात् मातृभाषायाः संस्कृतसंसर्गः क्षीणीबभूव, येन मातृभाषा अल्पप्रयुक्ता अभूवन्, जनानां संस्कृतपरिचये च ह्रासोऽन्वभूयत।

तथापि **स्वातन्त्र्यपूर्वकाले संस्कृतसाहित्यं स्वातन्त्र्यसङ्ग्रामेण समुज्जीवितं सन्मुखरतरं प्रत्यभात्।** संस्कृतपत्रिकास्वपि प्रकाशिताः कविताः जनानां हृदि राष्ट्रदेवप्रबोधनार्थं भूयसीं प्रेरणां जनयामासुः। किं बहुना, **तदानीं बहवः स्वातन्त्र्यसङ्ग्रामिणः संस्कृतज्ञा एवासन्;** गुरुकुलेषु मठमन्दिरेषु च स्वातन्त्र्यसङ्ग्रामाय सम्मेलनान्यायोज्यन्ते स्म। **स्वातन्त्र्यात् पूर्वं** नैके जगज्जीवनभट्ट–रूपनाथझा–**विश्वेश्वरपाण्डेय–सुब्रह्मण्य–**

**सीतारामभट्टपर्वणीकर-चण्डीदास-शिवकुमारमिश्र- महेशचन्द्र-तर्कचूडामणि- केरलवर्मा- रामावतारशर्मा- अप्पाशास्त्रीराशिवडेकर- विधुशेखरभट्टाचार्य- भट्टमथुरानाथ-शास्त्री-उमापतित्रिपाठी- गङ्गाधरशास्त्री- रामशास्त्रीतैलङ्गो- भारतेन्दुहरिश्चन्द्र-अम्बिकादत्तव्यास- कस्तूरीरङ्गनाथ- वीरराघव- श्रीनिवासशास्त्रीसदृशाः परःशताः साहित्यिकाः कालजयिनीः रचनाः प्रणिन्युः।**

अधिगते स्वातन्त्र्ये, अधिकृते स्वेनैव स्वशासने, अपगते च पारतन्त्र्यभये देशे नवीनः परिवेशः परिदृष्टो बभूव। परिवेशानुगुणानि देशात्मबोध- प्रगति- वैषम्य- समस्या- बौद्धिकसमृद्धि- सामाजिकसाम्य- जिजीविषा- संङ्घर्षप्रभृतीनि तत्त्वानि भारतीयसाहित्ये समायातानि, संस्कृतसाहित्येऽपि। तानि च प्रत्यक्षत ऊर्जस्वलस्वरूपेण पाठकहृदये प्रतिभातानि। नवीनाश्च साहित्यप्रकारा रचयितृभिराविष्कृताः।

इदमेवाधुनिकसंस्कृतसाहित्यस्य वैशिष्ट्यं यदाधुनिककालेऽपि महाकाव्यादिदीर्घपारम्परिकप्रकाराः, लघु-लघुतरकाव्यप्रभेदा अपि प्रणीयन्ते। साम्प्रतिकमहाकाव्यादिकाव्यभेदेषु पुरातनकल्पनाप्रावण्यस्य स्थानं वास्तववादेनाधिगृहीतम्। कल्पनैव चारुत्वं साध्यति, रचयितुर्मनोगतं स्फोरयति, अतस्तां विना काव्यरचनैव न सम्भवतीति नैके ब्रूयुः। उच्यते-सत्यं, परन्त्वाधुनिककाले कृतिकारस्य परिवेशे दृश्यमानवस्तूनां यथाशक्ति समुद्धरणे तात्पर्यात् कल्पना तत्पोषिकात्वेन गौणरूपेणैव भासते।

स्वातन्त्र्योत्तरकालादद्यावधि नैके कवयो बभूवुः, येषु वयं वैश्विकसाहित्यिकप्रतिमानं निश्चिनुमः। शताधिकाः महाकाव्यकाराः, परःशताः लघुकाव्यकाराः, एतावन्तो गीतिकाव्यकाराः, बहवो रूपककाराः, अनेके गद्यकाराश्चास्मिन् काले आविर्भूताः, आविर्भवन्ति च। एषां नामग्रहणे गौरवभयमिति ते ते इतिहासग्रन्थेषु अवलोकनीयाः। एषु ये ये यदा यदा समाजेऽवतीर्णास्ते ते तात्कालिकं स्वातन्त्र्यादिसम्बद्धानि वस्तूनि विषयीकृत्य काव्यानि चक्रिरे। केचनापि पारम्परिकोपजीव्यान्यादाय पुरातनविधिना साहित्यं रचयामासुः। साम्प्रतिककाले भाषान्तरसाहित्यप्रतिस्पर्धया साहित्यं रचयतां नामबाहुल्येऽपि एतेषु काँश्चनैव निदर्शनरूपेण पुरस्तादुद्धरामः, ये तावदाधुनिककालस्य सुदीर्घां सरणिं दीर्घतरीकुर्वन्ति। एषु जानकीवल्लभशास्त्री, जगन्नाथपाठकः, रामकरणशर्मा, सत्यव्रतशास्त्री, वेङ्कटराघवः, रेवाप्रसादद्विवेदी, शिवदत्तशर्मचतुर्वेदी, प्रभुनाथद्विवेदी, पद्मशास्त्री, रमाकान्तशुक्लः, श्रीनिवासरथः, भास्कराचार्यत्रिपाठी, दिगम्बरमहापात्राः, प्रबोधचन्द्रमिश्रः, राजेन्द्रमिश्रः, राधावल्लभत्रिपाठी, केशवचन्द्रदाशः, हर्षदेवमाधवः, प्रवीणपण्ड्याः, वनमाली विशाल इत्यादयः प्रमुखाः। एवमपरेऽपि।

अस्तु। संस्कृते विरचितपूर्वं विरच्यमानं वा साहित्यं भवतु, तत्रात्र च कल्पनाप्रावण्यमस्तु नास्तु वा, सर्वत्र वयं साहित्ये मुखरितं जीवनं प्रत्यक्षीकुर्मः, जीवनस्यात्मचिन्तनं च प्रतीमः। साहित्यशब्दस्य व्युत्पत्तिं कुर्वद्भिः पूर्वाचार्यैः यत् **शब्दार्थयोः सहभावः साहित्यं, हितेन सह वर्तमानं सहितं, तद्भावः साहित्यमिति** मार्गद्वयमुद्भावितं, तद् वस्तुतः आङ्ग्लात् 'लिटिरेचर्' इति पदात्तदात्मानं पृथक्करोति। योऽत्र समन्वयः साहित्ये उपक्रान्तः सोऽपि जीवन एव। अतः ये तावद् साहित्यगुणास्ते जीवनसम्बद्धाः, जीवनगुणाश्च साहित्येऽनुस्यूताः। साहित्य-जीवनयोर्गुणानाम-भिन्नत्वमिति कथने न दोषः।

सम्प्रति सोऽयं प्रश्नः समुदेति यत् कालानुरोधेन गुणाधारेण साहित्ये समुपस्थितानां वादानां समन्वय-प्रगति-च्छाया-प्रतीकादीनां मध्ये कस्याप्यधिकतरमुपयुक्तत्वं, कोऽप्येक एव ग्राह्यः, अथवा समेऽपि समन्वयस्वरूपेण स्वीकार्या इति। लभ्यन्ते च साहित्ये भौतिक-बौद्धिक-सामाजिक-आध्यात्मिकचिन्तनानि। उपर्युक्तेषु वादेषु प्रत्येकमधस्तनमन्यतमं किमपि चिन्तनं प्राधान्यमुपयाति। अतः व्यक्तिरुच्यनुसारेण तदनुगुणो वादः प्रधानश्चेत्तदन्ये वादा न त्याज्यतां यान्तीति दृश्यते। यतोहि एकस्य गुणस्य प्राधान्ये सति अपरेऽवश्यमेव साहित्ये क्वापि क्वापि स्थले

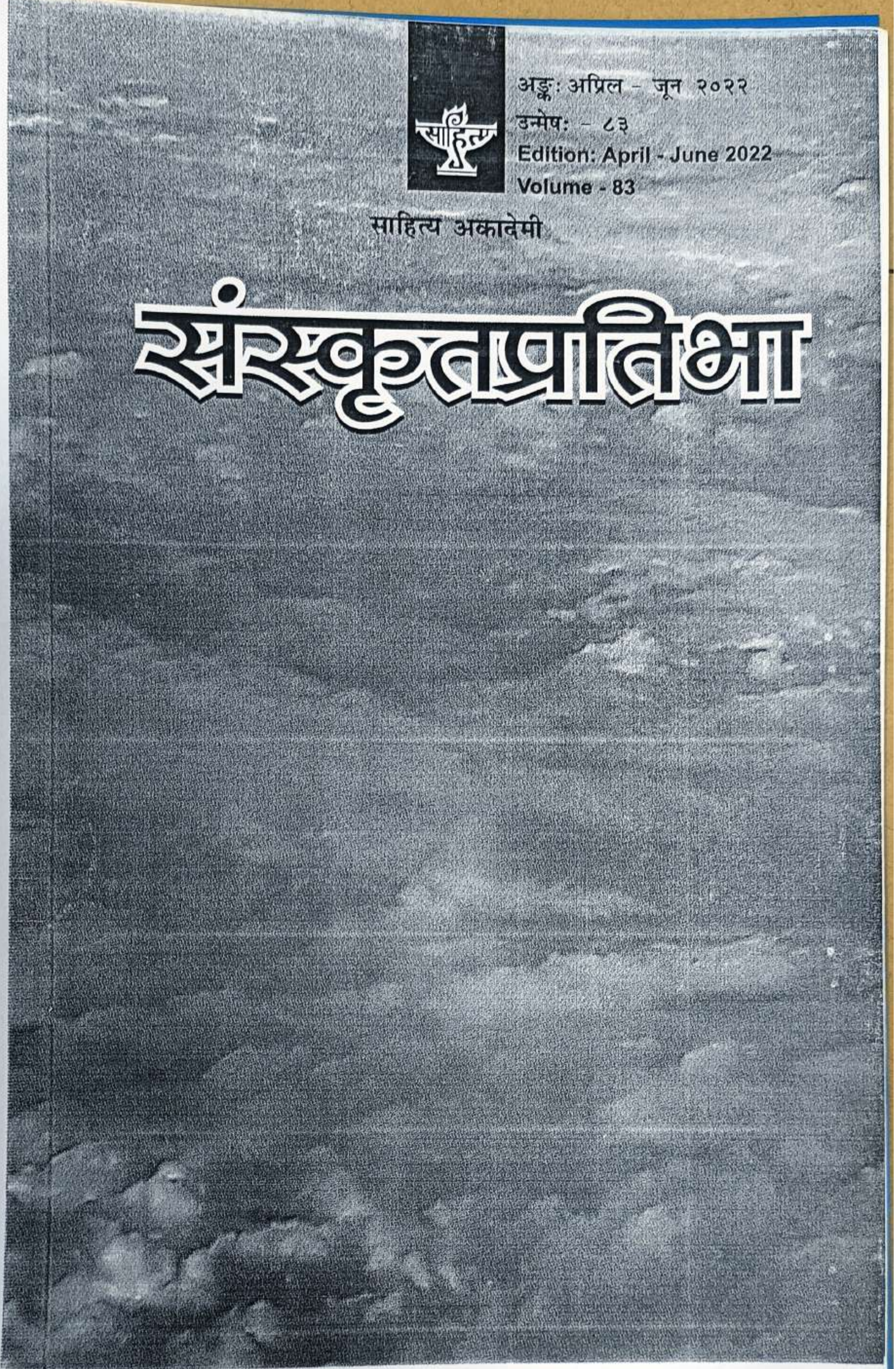

अङ्कः अप्रिल - जून २०२२
उन्मेषः - ८३
Edition: April - June 2022
Volume - 83

साहित्य अकादेमी

# संस्कृतप्रतिभा

29

परिचयपत्रादिप्रदर्शनाय पृष्टा तदानीमुवाच 'न मयि किमपि पत्रम्। अक्षरज्ञानशून्याया मे कृष्णाक्षरमहिषयोस्तुल्या प्रतीतिः। कोपि परिचिनोतु, न परिचिनोतु नाम! अमुकराज्ये अमुकमण्डले अमुकग्रामे मम वंशपरम्परायाश्चिरन्तनी वसतिः। पूर्वपुरुषाः कर्मकराः श्रमिका वा देशे इतस्ततो व्रजित्वा श्रमं कुर्वन्ति स्म। तदानीं न कोपि परिचयं पृच्छति स्म। इदानीं कोयं कालः समुपस्थितः यत् सर्वे परिचयपत्रम पृच्छन्ति। बाबूजी! शपामि अहमेव मे परिचयः। परन्तु न मे किमपि परिचयपत्रम्। श्रुत्वैवं भवानेव प्रमाणम्। आदिशति चेत् श्व आरभ्यागमिष्यामि। मासिकं पारिश्रमिकं तु द्विसहस्रं रूप्यकाणि।' क्षणं विरम्य, स्तोकं विचिन्त्य च पूर्वमेव प्रतिवेशात् सङ्गृहीतगर्घौमातृव्यवहारः कमलेश ओमिति प्रतिवचनीचकार। परेद्यवि आरब्धा गङ्गामातृसेवा।

परन्तु कमलेशसहधर्मिणी सुरमाऽऽधुनिकी महिला। महिलाधुनिकी, पुरातनी, पारम्परिकी वास्तु नाम, जनोदरस्यान्तस्तलात् वृत्तमुद्घाटयितुं क्षमा। मध्ये मध्ये गङ्गामातरमितः पृच्छन्ती तत आलपन्ती मासाभ्यन्तरे सर्वमेव तद्विषयेवागमत्। गङ्गामातुः किमस्ति बत गोपनीयम्। सर्वं सहकृतमृदुस्मिता पर्यवेषयत्। को बत विनोदो दुःखमजस्रं न्यूनीकृत्य, क्वापि विपुलीकृत्य वा! दुःखप्रकाशनेन क्षणायास्तु नाम गतभारं सम्पद्यते हृदयं दरिद्रस्य।

ततः परं गर्ङ्गामाता पुनः परगृहकर्मणि सस्मितं व्यापारयत्यात्मानम्। तेषु तेषु दिनेषु गङ्गामात्रा यद् यद् सुरमायाः पुरस्तात् प्राकाशि, तस्यायं सङ्क्षेपः।

– अस्ति हिमालयपाददेशे शिलादुर्गं नाम शतस्य परिवाराणां ग्रामः, यत्र पुष्करावर्तकानां मेघानां बहुधा वज्रगर्जनं श्रूयते, वर्षति चाजस्रं वारि। परन्तूत्तुङ्गेप्रस्तरस्थले ग्रामे तत्र बिन्दुमात्रं जलं न स्थिरीभवति। वृष्टिकाले गगनपतितस्य जलराशेः स्थूला धाराद्यस्तात्प्रवहन्ती जनैर्दृश्यते। पानाय जलं दूरात् सङ्गृह्यते महता कालव्ययेन। परितः शिलासङ्घातकार्कश्यकारणात् शस्योपार्जनं दिवास्वप्नवत्। ततो दूरे दूरतरे देशेऽगोमहिषमेषादीन् चारयित्वा प्रत्यावर्तन्ते तत्रत्या निवासिनः सायम्। पशूनामेषां दुग्धहरणमेवोपार्जनं ग्रामवासिनाम्। दुग्धस्य शुद्धस्यापि मूल्यमतिस्वल्पं ग्रामेषु। तस्मिन्नेव शुद्धदुग्धे तद्गुणत्रयजलमिश्रणेनापि तस्य मूल्यं गुणत्रयाधिक्यमारोहति नगरेषु इत्ययं नागरो महिमा, बुद्धिसौक्ष्म्यं च तद्विक्रेतृणाम्। दीना ग्रामीणा नैतादृशा बुद्धिन्तः। दुग्धे जलमिश्रणेन नूनं नरकगतिरिति धिक् तेषां वराकत्वम्। उपार्जनाभावादुदरपोषणाय प्रतिगृहमेकैकं विहायापरे नगराभिमुखीभवन्ति स्वस्वपरिवारेण सह। नगरेष्वेते नागराणां वसतेरुपकण्ठं कुटीराणि निर्माय वसन्ति, सेवाविधिं चाचरन्ति तेषाम्। गङ्गामातुः पूर्वपुरुषा अपि

# गङ्गाम्मा

डॉ. भागीरथिनन्दः

गङ्गाम्मा नाम गङ्गामाता यत्किमपि वदति हसन्त्येव वदति। परगृहेषु कार्यं करोति। प्रातः सायं च। काल एव गृहाणि प्राप्नोति। उच्छिष्टपात्राणि फेनिलाक्तजालकेन घर्षं घर्षं परिष्करोति। शुष्कवस्त्रेण परिप्रोञ्छ्य यत्नेन पात्राद्यानीषु सज्जीकृत्य स्थापयति। ततः परं सम्मार्जनीं करे धृत्वा शनैः शनैश्चालयन्ती गृहास्तरणमलमेकत्रीकृत्यावकरे पूरयति। धूलयो नेकशः तत्प्रयासं तिरस्कुर्वन्त्य इवावकरप्रवेशशशसयेऽद्यः पतन्ति। ङ्गामाता किमु तास्त्यजतु! समूलमुत्खातुं बऽमनाः तत्रैव भूमामुपविश्य दन्तान् निष्पीड्यादावङ्गुलीभिस्ततो नखैस्ता आदाय तद्गर्भे पातयति। तत आंरभते द्रोणीं जलेन पूरयित्वा वस्त्रेणास्तरणप्रोञ्छनम्। अधउपविश्य हस्तद्वयेनास्तरणे वस्त्र सारयन्ती कृष्णवर्णं प्रस्तरमपि काचीकरोति, धूसरवर्णं च शङ्खशुक्लीकरोति। आस्तरणे मुखमवश्यं सुस्पष्टं दृश्येत। ततः परं कपाट–वातायनासन्दिकोत्पीठिकादिषु सूक्ष्मवस्त्रेण तत्कोणानुकोणेषु रहसि गुप्तमवज्ञाशीलं धूलिराशिं बलादिव निष्कासयति। होराद्वये सकलामपि आरात्रात् आदिवसाच्च गृहावनीं तद्वासिभिर्वनीकृतां विमलीकृत्य दीर्घं निःश्वस्य सकृद् वस्त्राञ्चलेन मुखस्वेदं शोषयति। ततः परं प्रसादं लभते। सर्वदैव स्मितसदनं तस्या वदनम्। स्मितं तस्या वदने स्वाभाविकम्, अभिनयो वा?

गङ्गाम्मा अर्थात् गङ्गाख्या अम्मा न तु गङ्गाया अम्मा, संस्कृतेन गङ्गामाता। षष्टितोधिकं वयः। दीर्घा कृशा च तनुयष्टिर्वेणुलतेव। दीर्घकर्कशौ च बाहू। चरणौ चिराय चञ्चलौ। मुखं प्राभातिकं दरमुकुलितकमलमिव, येन पूर्णविकासाय परिपूर्णसूर्योदयो न विलोकितः स्यात्। कपोलौ मुखगह्वराभ्यन्तरप्रविष्टावात्मस्थितिं न प्रत्याययतः। नयनयोः करुणातटिन्या उत्तालतरङ्गाः। भालेऽम्लानसिन्दूरबिन्दुः, समुज्ज्वलाः सुन्दराश्च सध्वीत्वपरिचायकाः काचकघङ्कणा मणिबन्धयोः। परिहिता शाटी साद्यारणी। कञ्चुकमपि सामान्यम्। परन्तु मुखे स्मितस्य स्थायी निवासः। क्वापि क्वाप्योष्ठौ स्फारयन्ती भग्नकतिपयदशना विलोलमव्याजं च हसति तुच्छमविगणय दुःखराशिं गङ्गामाता।

गङ्गामातुः किं तावद् दुःखम्?

अद्यत्वे गृहेषु गृहसेवक/सेविकानियुक्तये तेषां तासां च परिचयसत्यापनमारक्षिकार्यालयेवश्यमेव सम्पादनीयमिति राजाज्ञा। कोपि सम्पादयति, कोपि च न सम्पादयति गृहस्वामी। कमलेशस्य गृहकार्यनिस्तारणाय स्थिरीकृता गङ्गामाता

अङ्कः अक्टूबर-दिसम्बर २०२३
उन्मेषः - ८९
Edition: October-December 2023
Volume - 89

साहित्य अकादेमी

# संस्कृतप्रतिभा

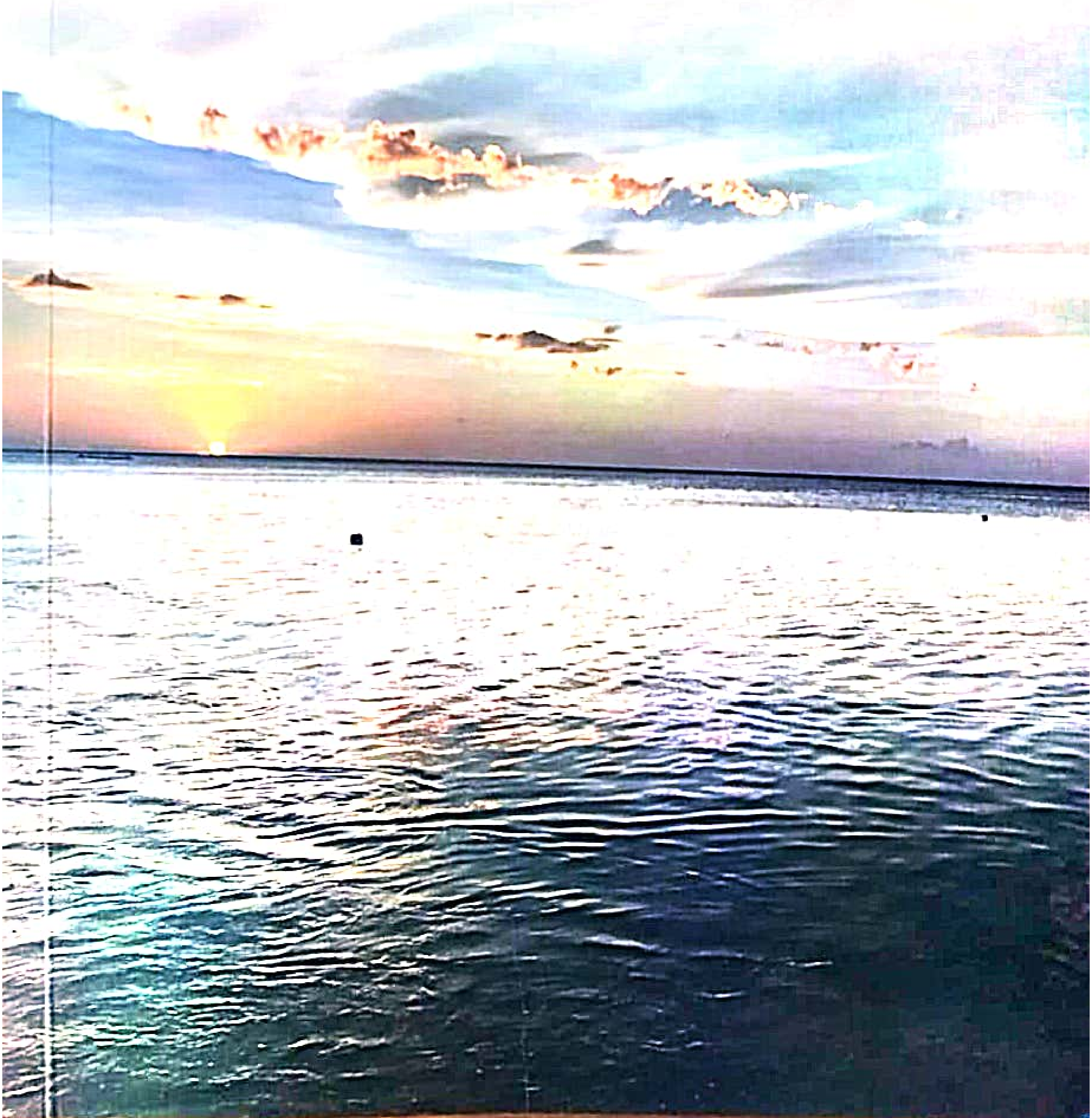

संस्कृतप्रतिभा
साहित्य-अकादेम्याः त्रैमासिकी पत्रिका
**Samskrita Pratibha**
Sahitya Akademi's Quarterly Journal

Buy Books Online

Edition: October - December 2023
Volume-89

*Editorial Office :*
Sahitya Akademi, Rabindra Bhavan,
35, Ferozeshah Road, New Delhi-110001

*Articles in this journal do not necessarily reflect the views or policies of the Sahitya Akademi. All material is protected by copyright and cannot be used in any manner without the permission of the respective authors and the Sahitya Akademi.*

Send your literary contributions to the Secretary, Sahitya Akademi, Rabindra Bhavan, 35 Ferozeshah Road, New Delhi 110001 • 4 D L Khan Road, (Near SSKM Hospital), Kolkata 700025 • Central College Campus, Dr. B.R. Ambedkar Veedhi, Bengaluru 560001 • 172, Mumbai Marathi Granth Sangrahalaya Marg, Dadar, Mumbai 400014 • Main Building, Guna Buildings (Second Floor), 443 (304), Anna Salai, Teynampet, Chennai 600018.

In India inclusive of Mailing : single copy, forty rupees; one year (four issues) one hundred fifty rupees; *Three years (twelve issues) four hundred rupees; Abroad by airmail* : single copy, fifteen US dollars; one year (four issues) fifty US dollars; Three years (twelve issues) one hundred thirty US dollars.

Published by Dr. K. Sreenivasarao, Secretary, Sahitya Akademi,
Rabindra Bhavan, 35, Ferozeshah Road, New Delhi-110001, India
Typeset & printed by Vikas Computer and Printers, Shahdara, Delhi-32

# अन्योक्तिविंशतिका

प्रो.भागीरथी नन्दः

विहंगम ! विहारमाचर विहायसि स्वेच्छया
जवेन गगनान्तरे रुचिकरान् पतङ्गान् वृणु ।
न विस्मरतु भोजनं जलमितो भुवो लभ्यते
ततोऽम्बरतलात्तवावतरणं बलान्निश्चितम् ॥ १ ॥
सरोवरसमं स्वरूपमयितुं न कुल्ये मनाक्
भ्रमादपि मनः प्रवर्तय विरुध्य तस्यादरम् ।
न तत्र महिषा मलं च कृमयः कुगन्धोत्करो
भवन्ति किल पद्मिनीकुमुदिनीमरालादयः ॥ २ ॥
अहर्निशमहो मुदा वसतये विशालं वपु-
स्त्वया वट ! समर्पितं निखिलकाकवंशान्प्रति ।
परं विनिमयेन तन्मलरवास्त्वयाऽऽसादिता-
स्तथाप्यसि वटः स्थिरोऽस्थिरगृहा अमी वायसाः ॥ ३ ॥
पुराऽतिघनकानने खरमृगादिभक्ष्यान्विते
नदीशिखरिसङ्कुले महति यस्य यातं वयः ।
स पञ्जरगतोऽधुना करवितीर्णमांसादनो
भयेन भयदायको मृगपतिः कथं वर्तताम् ॥ ४ ॥
गतासुपशुचर्मणा परिवृतायतिर्गाढत-
स्ततोऽपि सुनिबद्ध एष परितस्त्वचस्तन्तुभिः।
मृदाऽपि घटितो घटः पटहतां हि रिक्तो व्रज-
न्नहो प्रकुरुते रवं कटुतरं जनैः श्रूयताम् ॥ ५ ॥
धिगस्तु रसनाद्वयीं खरगतिं गरोद्गारिणीं
द्विजिह्व ! तव या ददाति मरणं क्रियैवैकया ।
ययैकरसनाज्जनादधिगतं न कार्यद्वयं
छलेन मधुभाषणं परमनेन मर्माहतिः ॥ ६ ॥